e-ISJN: A4372-3069 (UGC Approved) ISSN: 2455-443X
Research Inspiration
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer Reviewed, Open Access & Indexed)
www.researchinspiration.com
Email: researchinspiration.com@gmail.com, publish1257@gmail.com
Vol. 2, Issue-III
June 2017
Impact Factor : 4.012 (IIJIF)

बौद्धकालीन शिक्षण पद्धति एवं संस्थाएँ

मेधावी कृष्णा
शोधछात्र, बौद्ध अध्ययन विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007

प्राचीन काल में अर्थात् बुद्ध धर्म से पहले शिक्षा में गुरु शिष्य परम्परा के अनुसार बालक के उपनयन संस्कार के पश्चात् गुरु शिक्षण प्रक्रिया का आरम्भ करते थे। उस समय शिक्षण संस्थान जंगल एवं वनों में हुआ करते थे, इसका भी मुख्य कारण यह था कि प्राचीन शिक्षा पद्धति में वेद, उपनिषद, साधना योग आदि के लिए शांत वातावरण का होना अति आवश्यक होता था। विद्यार्थी गृह त्याग कर के जंगल में गुरु के आश्रम में ब्रह्मचर्य की तरह विद्या ग्रहण किया करते थे। इस शोधपत्र के माध्यम से बौद्धकालीन शिक्षण पद्धति पर एवं शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओ की कार्य प्रणाली का अध्ययन करना है।

छठी शताब्दी ई. पूर्व का समय बौद्धकालीन शिक्षा का काल था। बौद्धकालीन शिक्षा का प्रारम्भ उपनयन संस्कार की भाँति प्रवज्जा संस्कार के बाद शिक्षा प्रारम्भ किया जाता था। बौद्ध धर्म में विद्यार्थी गृहत्याग कर के जंगलों में बने बौद्ध संस्थान विहार एवं मठ में जा के शिक्षा ग्रहण किया करते हैं। प्रसिद्ध चीनी यात्री युआन च्वांग के अनुसार बौद्ध काल में 5000 विहार भारतीय भूखण्ड पर थे। इन विहारों में 8 वर्ष से कम के विद्यार्थियों को शिक्षा दिया जाता था और प्रब्बजित अर्थात् जिनका प्रवज्जा संस्कार हो गया होता है उन विद्यार्थियों का उपासक के नाम से जाना जाता था। उपासक काल के अन्त में यानि जब उपासक काल की शिक्षा पूर्ण होती थी तो उसका सम्पदा संस्कार होता था। उपसम्पदा के समय उपासक की उम्र 20 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए और ऋणी, तथा अशक्त रोगी को दीक्षा देने पर रोक थी। इस धर्म में प्रवेश के लिए किसी वर्ग जाति का बन्धन नहीं था, जो व्यक्ति बुद्ध, धम्म और संघ में विश्वास करने वाले हो, वे बौद्ध–धर्म में प्रवेश कर सकते थे। बौद्ध धर्म के समस्त उपासक को अनिवार्यतः विनय और धर्म की शिक्षा प्रदान की जाती थी, और विनय में बताये गये नियम और सिद्धान्तों का अनुपालन करना उपासकों का मुख्य ध्येय होता था। इस धर्म के अनुसार उपासक किसी विद्वान या वरिष्ठ भिक्षु के आचार्यत्व को स्वीकार कर संघ के नियमों का पालन करता था।

इस प्रकार बौद्ध शिक्षा प्रणाली में उपासक–उपासिका भिक्षु–भिक्षुणियों की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया परन्तु जब बौद्ध धर्म में जन साधारण को शिक्षा दी जाने लगी तो इनकी शिक्षा प्रणाली प्रारम्भिक, वैदिक शिक्षा प्रणाली की भाँति हो गयी। दोनों पद्धतियों का आदर्श और शिक्षा–शिक्षण के तरीके समान हो गए। इस प्रकार

e-ISJN: A4372-3069 (UGC Approved) ISSN: 2455-443X
Research Inspiration
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer Reviewed, Open Access & Indexed)
www.researchinspiration.com
Email: researchinspiration.com@gmail.com, publish1257@gmail.com
Vol. 2, Issue-III
June 2017
Impact Factor : 4.012 (IIJIF)

बौद्ध विहारों एवं मठों ने शिक्षा का कार्य अपने हाथ में लिए और उसका विकास किया।

बौद्धकालीन शिक्षण संस्थाओं में विहार एवं मठ के अलावा भी कुछ मुख्य शिक्षण संस्थान एवं विश्वविद्यालय थे जिनमें– (1) तक्षशिला (2) सारनाथ (वाराणसी) (3) नालंदा (4) वल्लभी (5) विक्रमशीला (6) उवन्तपुरी (7) मिथिला आदि विश्वविद्यालय था।

प्राचीन काल में तक्षशिला ज्ञान और विद्या के क्षेत्र में सुप्रसिद्ध संस्थान था। आधुनिक में यह पाकिस्तान के रावलपिण्डी नामक नगर के पश्चिम की ओर लगभग बीस मील की दूरी पर स्थित है। इसकी प्रसिद्धि सातवीं सदी ई.पू. में ही हो गयी थी। यह उल्लिखित है कि इसकी स्थापना भरत ने की थी और इसका प्रशासन तक्ष को सौंपा था। अतः तक्ष के नाम पर इस स्थान का नाम तक्षशिला हुआ। जातकों से ज्ञात होता है कि देश के विभिन्न स्थानों से छात्र वहां जाकर आचार्य के सानिध्य में रहकर शिल्प का ज्ञान प्राप्त करते थे।[1] वहाँ वेदों के साथ–साथ हस्तिसूत्र, धनुर्वेद, आयुर्वेद एवं 18 शिल्पों की शिक्षा छात्रों को प्रदान की जाती थी। देश के कोने–कोने से विद्यार्थी यहां आकर शिक्षा प्राप्त करते थे। इनमें वाराणसी, राजगृह, मिथिला, उज्जियनी आदि नगरों के भी छात्रा रहते थे जो कि यहां ज्ञानार्जन हेतु आते थे। पाटलिपुत्र निवासी 'जीवन' तक्षशिला में जाकर अध्ययन किया था जो कि कालान्तर में आयुर्वेद का महान विद्वान बना। वह महात्मा बुद्ध का समकालीन था। यहाँ से अनेक सम्राटों ने शिक्षा प्राप्त की। कौशल नरेश प्रसेनजीत, मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त, महान अर्थशास्त्री कौटिल्य ख्यातिलब्ध वैद्य जीवक, वैयाकरण पाणिनी और पतंजलि ने यहाँ शिक्षा ग्रहण की थी। इसके वर्तमान अवशेष इस बात के प्रमाण हैं कि तक्षशिला ने चौथी ई.पू. से छठी शती तक अनेक उथल–पुथल देखे थे। यवन, यवन–बाख्वी, शक, पहल्वन, कुषाण और हूणों के अनेक आक्रमण इसने सहे थे तथा इन झंझावतों से अपने को यथारक्षित रखने का प्रयास किया था। इन आक्रमणों का परिणाम यह हुआ कि नवीन ज्ञान–विज्ञान का सम्पर्क भारत से हुआ और भारतीय जनमानस में उसका समावेश भी प्रारम्भ हुआ। जातक युग में यहाँ नैष्ठिक ब्रह्मचारियों की संख्या बहुत अधिक थी, जो वेद और शिल्प में पारंगत थे। वे एकांतवास करते थे तथा उनके साथ उनके शिष्य रहते थे। जातकों से विदित होता है कि यहाँ के एक आचार्य के निर्देशन में पाँच–पाँच सौ छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। ऐसे आचार्य अनेक थे जो सैकड़ों विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करते थे। निश्चित ही यहाँ की शिक्षा बहुत अधिक संघटित नहीं थी, किन्तु फिर भी इसका महत्त्व था। निर्धारित पाठ्यक्रम होता है, छात्र अपनी इच्छानुसार विषय पढ़ते थे। शिक्षा का प्रधान उद्देश्य था, स्वांत सुख, न कि उपाधि प्राप्ति। एक जातक में उल्लिखित है कि एक आचार्य से 103 विद्यार्थी धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करते थे। शिक्षा प्राप्त करने तथा शिक्षा देने में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी समान रूप से शिक्षा

e-ISJN: A4372-3069 (UGC Approved) ISSN: 2455-443X
Research Inspiration
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer Reviewed, Open Access & Indexed)
www.researchinspiration.com
Email: researchinspiration.com@gmail.com, publish1257@gmail.com
Vol. 2, Issue-III
June 2017
Impact Factor : 4.012 (IIJIF)

प्राप्त करते थे।[2] आचार्य के पास क्षत्रिय ब्राह्मण, वैश्य के साथ–साथ दर्जी और मछली मारने वाले निम्न जाति के लोग भी शिक्षा ग्रहण करते थे, जो उस युग की जाति–व्यवस्था के लचीलेपन की ओर भी इंगित करता था। धनी और निर्धन समान रूप से गुरु के शिष्य हो सकते थे। तत्कालीन युग में धनी छात्र धनराशि के साथ गुरु दक्षिणा देता था और निर्धन छात्र श्रम करके गुरु दक्षिणा प्रदान करता था। धनी छात्रों द्वारा प्रायः एक एक सहस्र कार्षा का गुरु को दक्षिणा के रूप में अर्पित किया जाता था। योग्य एवं मेधावी छात्रों को राजकीय सहायता पर शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा जाता था। वाराणसी और राजगृह के राजपुरोहित के पुत्र और युवराजों के साथ जाने वाले ऐसे छात्रों को देखा जा सकता था। स्पष्ट है कि इस युग में तक्षशिला अशोक के समय में शिक्षा का मुख्य केन्द्र था।[3] प्रतिभाशाली किन्तु निर्धन छात्रों को राज्यों और समाज की ओर से प्रत्येक सम्भव सहयोग प्राप्त होता था। तक्षशिला के शिक्षा केन्द्र का महत्व चौथी सदी ई. तक ही रहा, क्योंकि पाँचवीं सदी में भारत की यात्रा करने वाले फाह्यान ने इस स्थान से सम्बन्धित ऐसा कोई विवरण नहीं दिया जिससे यह जाना जा सके कि तक्षशिला उस समय शिक्षा और विद्या का प्रधान केन्द्र था। हेनसांग जब भारत आया था, उस समय इसका सम्पूर्ण वैभव नष्ट हो चुका था।[4] अन्य बौद्ध विहारों की अवस्था जीर्ण शीर्ण थी।

प्राचीन काल में उत्तरार्द्ध में नालन्दा विश्वविद्यालय अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त कर चुका था। वहाँ बौद्ध धर्म और दर्शन की शिक्षा के अतिरिक्त अन्यान्य विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी। इस विश्वविद्यालय के विषय में चीनी यात्रियों ने विशेष रूप से विस्तारपूर्वक लिखा है। वैसे नालन्दा की ख्याति महात्मा बुद्ध के समय से थी। 500 श्रेष्ठियों ने मिलकर 10 करोड़ मुद्राओं से नालन्दा क्षेत्र को क्रय करके महात्मा बुद्ध को अर्पित किया था। बुद्ध के प्रमुख शिष्य सारिपुत्र की यह जन्मभूमि थी। तथागत ने वहाँ के आम्रवन में कई दिन व्यतीत करके अपने शिष्यों को अपने धर्म की शिक्षा दी थी। कालान्तर में अशोक महान ने वहाँ विशाल विहार का निर्माण कराया था। ऐसा लगता है कि यह स्थान अपने प्रारम्भिक काल में ब्राह्मण शिक्षा का केन्द्र होते हुए भी बौद्ध धर्म और शिक्षा का प्रचार–प्रसार भी था। इसकी प्रमुखता पांचवी शती के मध्य में अधिक बढ़ी जब बौद्ध विद्वान दिङ्नाग ने नालन्द में जाकर वहाँ के विख्यात ब्राह्मण पंडित सुदुर्गम को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। समय–समय पर गुप्त राजाओं ने नालन्दा के विकास में सराहनीय योगदान किया था, जो उनकी धार्मिक सहिष्णुता और विचारों की व्यापकता का उज्जवल पक्ष है। सर्वप्रथम कुमारगुप्त ने इस बौद्ध संघ को दान दिया था। उसके बाद बुद्धगुप्त, तथागत गुप्त, नरसिंहगुप्त बालादित्य आदि अनेक गुप्त राजाओं ने इसे अपना संरक्षण प्रदान कर इसके विकास में योग दिया था। श्वानचांग के विवरण से ज्ञात होता है कि अनेकानेक बौद्ध विहारों का निर्माण यहाँ किया गया था। विहारों में कुछ तो काफी बड़े और भव्य थे जिनके गगनचुम्बी इमारत अत्यन्त आकर्षक थे। यहाँ का सबसे बड़ा विहार 203 फीट लम्बा और 164 फीट चौड़ा था। इसके कक्ष 9 फीट से 12 फीट तक लम्बे थे।

e-ISJN: A4372-3069 (UGC Approved) ISSN: 2455-443X
Research Inspiration
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer Reviewed, Open Access & Indexed)
www.researchinspiration.com
Email: researchinspiration.com@gmail.com, publish1257@gmail.com
Vol. 2, Issue-III
June 2017
Impact Factor : 4.012 (IIJIF)

यशोवर्मा के एक अभिलेख से विदित होता है कि नालन्दा के विहारों की शिखर श्रेणियाँ गगनस्थ मेघों का चुम्बन करती थीं। इनमें अनेक जलाश्य थे, जिनमें कमल तैरते रहते थे। यहाँ कई विशालकाय भवन थे, जिसमें छोटे–बड़े अनेक कक्ष थे। उत्पखनन से मिले अवशेष वहाँ की भव्यता प्रमाणित करते हैं। विश्वविद्यालय भवन में व्याख्यान के निमित्त 7 विशालकाय कक्ष और 300 छोटे–बड़े कक्ष थे। विद्यार्थी छात्रावासों में रहते थे तथा प्रत्येक कोनों पर कूपों का निर्माण किया गया था। इस विश्वविद्यालय के खर्च के लिए 200 गाँव दान में प्राप्त थे, जिनकी आय से यहाँ से भिक्षु कार्यकर्ताओं और भिषु अध्येताओं का पालन पोषण होता था। यही नहीं, इन गांवों के निवासी प्रतिदिन कई मन चावल और दूध यहां भेजा करते थे। विद्यार्थियों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था। उनके आवास और भोजन की व्यवस्था विश्वविद्यालय द्वारा निःशुल्क की जाती थी। इस शिक्षा संस्था में प्रवेश पाने के इच्छुक विद्यार्थियों के लिए कठोर नियम थे। ऐसे प्रवेच्छुक विद्यार्थी को पहले द्वारपाल से वाद–विवाद करना पड़ता था तथा उसकी शंकाओं का समाधान करना आवश्यक था। उसके प्रश्नों से 8–10 विद्यार्थी असफल भी हो जाया करते थे और सिर्फ एक दो ही सफल होते थे। अपने–अपने विषय के यहाँ अनेक विद्वान थे। इत्सिंग के समय में यहाँ के विद्यार्थियों की संख्या 3000 थी किन्तु श्वानच्वांग के समय इस विश्वविद्यालय में छात्र संख्या बढ़कर 10,000 हो गई। यहाँ के शिक्षकों की संख्या 1510 थी जिनमें एक हजार दस सूत्र निकायों में दक्ष थे और शेष पाँच सौ अन्य विषयों में। श्वान च्वांग के समय इस विश्वविद्यालय का प्रधान कुलपति शीलभद्र था, जो अनेकानेक विषयों में पारंगत था। उसके पहले धर्मपाल इस विशविद्यिालय का कुलपति था। श्वानचांग भी यहॉ के प्रधान शिक्षकों में से था जिसने अनेकानेक विषयों पर अधिकार प्राप्त किया था। यहाँ विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। सुदूर प्रदेशों और विदेशों में विद्यार्थी यहाँ आकर शिक्षा प्राप्त करते थे। चीन, तिब्बत, कोरिया, तुखार आदि अनेक देशों के विदेशी शिक्षार्थी यहां रहकर ज्ञान प्राप्त करते थे तथा अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करते थे। विद्यार्थी के अध्ययन के लिए यहां धर्मयक्ष नामक विशालकाय पुस्तकालय था। इत्सिंग ने स्वयं 400 संस्कृत पुस्तकों की प्रतिलिपियां तैयार की थी, जिनमें लगभग 3 लाख श्लोक थे। रत्नसागर, रत्नोदधिऔर रत्नरंजक नामक तीन भवनों से मिलकर भव्य पुस्तकालय का निर्माण हुआ था, जिसमें जिज्ञासु और अध्ययनशील विद्यार्थियों की प्रायः भीड़ रहा करती थी। यहाँ का एक अध्यापक 9 से 10 विद्यार्थी को पढ़ाता था। इस विश्वविद्यालय के अध्यापक कक्ष बहुधा बड़े–बड़े थे। इनमें 8 विशाल व्याख्यान भवन थे और 300 छोटे व्याख्यान कक्ष। सभी विषयों में मिलाकर नित्य लगभग 100 व्याख्यानों की आयोजना की जाती थी। नालन्दा में विशेषकर महायान शाखा का अध्ययन किया–कराया जाता था। यहाँ के अनेक विहार भी महायानी शाखा के थे। पालि भाषा की शिक्षा अनिवार्य रूप से प्रदान की जाती थी। नागार्जुन, वसुबन्धु, असंग, धर्मकीर्ति आदि ऐसे ही महायानी विचरक थे, जिन्होंने इसी शिक्षा केन्द्र से अपने को उन्नत किया

e-ISJN: A4372-3069 (UGC Approved) ISSN: 2455-443X
Research Inspiration
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer Reviewed, Open Access & Indexed)
www.researchinspiration.com
Email: researchinspiration.com@gmail.com, publish1257@gmail.com
Vol. 2, Issue-III
June 2017
Impact Factor : 4.012 (IIJIF)

था। श्वान–चांग ने अनेक ऐसे विद्वान आचार्यों का उल्लेख किया है, जो अपने अपने विषय के प्रकाण्ड पंडित थे तथा भारत के विभिन्न प्रदेशो से आकर यहाँ अध्ययन–अध्यापन करते थे। धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभागिम, जिनमित्र, आर्यदेव, दिङ्नाग, ज्ञानचन्द्र आदि ऐसे ही प्रतिभावान विद्वान थे जिनके आकर्षण से दूरस्थ विद्यार्थी भी ज्ञानार्जन के निमित्त आते थे और अपने को सुबुद्ध और सुरक्षित बनाने की चेष्टा करते थे, नालन्दा का पाठ्यक्रम विस्तृत था। मुख्य रूप से यह विहार महायान शाखा का था, किन्तु हीनयान शाखा के ग्रंथों तथा अन्य विषयों का भी अध्यापन होता था। ह्वेनसांग ने योगशास्त्र का अध्ययन करने के लिए नालंदा में प्रवेश किया था। यहाँ वाद–विवाद ज्ञानार्जन का प्रमुख साधन था। प्रारम्भ में विद्यार्थियों को व्याकरण के नियमों को कंठस्थ कराया जाता था, फिर भाषा का पूर्णज्ञान कराने के बाद तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदि के अध्ययन के बाद विद्यार्थियों को वाद–विवाद में अग्रसर होने का अवसर दिया जाता था। नालंदा में तीन वेदों, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं वेदान्त तथा सांख्य दर्शन का भी अध्यापन होता था। चिकित्साशास्त्र भी अध्ययन का एक विषय था। शीलभद्र की अध्यक्षता में हेनसांग ने जिन विषयों का अध्ययन किया था उनमें से प्रमुख थे– योगशास्त्र, हेतु विद्या, शब्द विद्या आदि। यहाँ पालि का अध्ययन अनिवार्य था, क्योंकि हीनयान ग्रन्थ पालिभाषा में ही है। अतः हम देखते हैं कि नालंदा के पाठ्यक्रम में अनेक विषय सम्मिलित थे तथा सभी विषयों की उच्च शिक्षा दी जाती थी एवं विद्यार्थी समान रूप से अपना ज्ञानवर्द्धन करते थे।

नालन्दा का सम्बन्ध प्राचीन काल से जैन एवं बौद्ध धर्म से था। दीघनिकाय के ब्रह्म जाल सुक्त में महात्मा बुद्ध के नालन्दा में प्रवास का वर्णन है। जैन भगवती सूत्र में वर्णित है कि महावीर स्वामी ने नालन्दा में गोसाल से भेंट की और चौदह वर्षावास निवास किया। अशोक के काल में भी नालन्दा बिहार उन्नत हो चुका था। ह्वेनसांग के अनुसार शाकादित्य या कुमारगुप्त प्रथम दान से देकर नालन्दा विश्वविद्यालय की नींव रखी। जिसके उत्थान में बुधगुप्त, तथागतगुप्त और बालादित्य ने भी योगदान दिया। बालादित्य ने नालन्दा में तीन मंजिला मण्डप निर्मित करवाया। जिसमें कई विहार भी थे। पाल अभिलेखों में इसे महाविार अर्थात् 'नालन्दा महाविहार आर्य भिक्षुस्य' कहा गया है। हर्ष के काल में नालन्दा का महत्त्व गढ़ गया था। ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष द्वारा नालन्दा में शैक्षणिक व अन्य व्यय के लिए सौ ग्रामों का राजस्व दिया गया और पीतल का विहार बनवाया गया। पाल शासकों के काल में नालन्दा में बौद्ध तंत्रवाद का विकास हुआ। देवपाल के शासन काल में नालन्दा को अर्न्तराष्ट्रीय पहचान मिली। देवपाल (810 से 850 ई.) के मुद्दगिरि ताम्रपत्र में वर्णित है कि सुमात्रा के महाराज बेलपुत्र देव के आग्रह करने पर इनके द्वारा निर्मित करवाए गए विहार की व्यवस्था के लिए देवपल ने पांच गांव दान में दिया। विश्वविद्यालय का नेतृत्व विशेषज्ञ कुलपति को दिया जाता था। इसका चुनाव चरित्र, विद्वता व कार्य अनुभव को ध्यान में रखकर किया जाता था। कुलपति की सहायता के लिए शिक्षा समिति व

e-ISJN: A4372-3069 (UGC Approved) ISSN: 2455-443X
Research Inspiration
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer Reviewed, Open Access & Indexed)
www.researchinspiration.com
Email: researchinspiration.com@gmail.com, publish1257@gmail.com
Vol. 2, Issue-III
June 2017
Impact Factor : 4.012 (IIJIF)

प्रबन्ध समिति गठित की गयी थी। शिक्षा समिति का कार्य छात्रों के प्रवेश, पाठ्यक्रम का निर्धारण और अध्यापकों के पाठ्य विषय का विभाजन, सम्बन्धित कार्य करना था। प्रबन्ध समिति के द्वारा सामान्य प्रशासन, भवन–निर्माण, आवास, भोजन, चिकित्सा एवं आय–व्यय से सम्बन्धित कार्य किए जाते थे। नालन्दा विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा अत्यन्त कठिन थी। इनमें व्याकरण, अभिधम्म कोश व न्यास से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते थे। ह्वेनसांग के अनुसार केवल बीस प्रतिशत छात्र ही प्रवेश परीक्षा में सफल हो पाते थे। विश्वविद्यालय में न्यूनतम बीस वर्ष की आयु के विद्यार्थी ही सम्मिलित किए जाते थे। प्राथमिक शिक्षा के लिए भी प्रबन्ध किया गया था। जिसमें ब्रह्मचारी ही प्रविष्ट किए जाते थे। नालन्दा में एक विशाल पुस्तकालय निर्मित किया गया था। ह्वेनसांग के अनुसार दीवारों से ही बनायी गयी पत्थर की आलमारियों पर पुस्तकों को रखा जाता था। सम्बन्धित विषय के विद्वासन अध्यापक को पुस्तकालय के देख–रेख की जिम्मेदारी दी जाती थी। पुस्तकालय में पुस्तकों को संरक्षण के साथ–साथ लेखन भी किया जाता था। इत्सिंग ने नालन्दा से चार सौ संस्कृत ग्रंथों की प्रतियां ली थीं। पुस्तकालय के तीन भवनों का उल्लेख प्राप्त होता है– रत्नादधि, रत्नासागर तथा रत्नरंजक। ह्वेनसांग के अनुसार नालन्दा में 5 विद्याएं पढ़ायी जाती थी– शब्द विद्या, चिकित्सा विद्या, हेतु विद्या, शिल्प स्थान विद्या और अध्यात्म विद्या। प्रत्येक विषय में सौ व्याख्यान होते थे। इसके अतिरिक्त वाद–विवाद के द्वारा भी ज्ञान का प्रतिस्पर्धी विकास किया जाता था। नालन्छा से शिक्षा ग्रहण करने वाले देश–विदेश के विद्यार्थियों की लम्बी सूची है। नालन्दा विश्वविद्यालय में विभिन्न ग्रंथों का अनुवाद भी किया जाता था। इससे सांस्कृतिक समन्वय व ज्ञानार्जन में सहायता मिली। शीलभद्र ने ''आर्य बुद्ध भूमि बुद्ध व्याख्यान' ग्रन्थ की रचना की। धर्मपाल ने 'वर्ण सूत्र वृत्तिनाम' नामक संस्कृत व्याकरण की टीका लिखी। इसके अतिरिक्त शांतरक्षित ने तत्त्व संग्रह, पद्मसंभव ने समय 'पज्यशिका' ग्रंथों की रचना की। यहां पर रहने वाले शिक्षक, विद्वता उच्च चरित्र के लिए प्रसिद्ध थे। ह्वेनसांग के अनुसार इन्हें समाज में अत्यन्त सम्मानित स्थान प्राप्त था।[5]

कालान्तर में नालंदा की अवनति होने लगी, सम्भवतः विहारों का निर्माण न हो सकना ही अवनति का प्रमुख कारण था। बख्तियार खिलजी ने नालंदा के भवनों को ध्वस्त कर दिया। वर्तमान में नालंदा के अवशेष ही अपने यश–कीर्ति का बखान करते हैं।

विक्रमशिला

इस विश्वविद्यालय की स्थापना आठवीं सदी में बंगाल के पालवंशीय शासक धर्मपाल ने बिहार प्रदेश में स्थित भागलपुर से 25 मील दूर की थी। पूर्व मध्ययुग के शिक्षाकेन्द्रों में इस विश्वविद्यालय की सर्वश्रेष्ठ ख्याति थी। अनेक बौद्ध मंदिरों और विहारों का निर्माण यहां कराया गया था। उन विहारों के कक्षों में व्याख्यान हुआ

e-ISJN: A4372-3069 (UGC Approved) ISSN: 2455-443X
Research Inspiration
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer Reviewed, Open Access & Indexed)
www.researchinspiration.com
Email: researchinspiration.com@gmail.com, publish1257@gmail.com
Vol. 2, Issue-III
June 2017
Impact Factor : 4.012 (IIJIF)

करते थे तथा सर्वदा दर्शन और धर्म की चर्चाएं आयोजित की जाती थी। यहां के अनेकानेक विद्वानों ने विभिन्न ग्रन्थों की रचना की, जिनका बौद्ध साहित्य और इतिहास में नाम है। उन विद्वानों में प्रसिद्ध है रक्षित, विरोचन, ज्ञानपद, बुद्ध, खेतारि, रत्नाकर शान्ति, ज्ञानश्री मिश्र, रत्नवज्र, दीपशंकर और अभयशंकर। दीपंकर नाम विद्वान भिक्षु ने सैकड़ों ग्रन्थों (सम्भवतः 200 ग्रन्थों) की रचना की थी। वह इन शिक्षा–केन्द्र के महान प्रतिभाशाली व्यक्तियों में अकेला था, जो गौड़ (बंगाल) प्रदेश का रहने वाला था। वह बौद्व धर्म के प्रचारार्थ तिब्बत भी गया था। यहां बौद्ध धर्म और दर्शन के अतिरिक्त न्याय, तत्वज्ञान, व्याकरण आदि की भी शिक्षा दी जाती थी, विद्यार्थियों की सुविधा के लिए पुस्तकें भी उपलब्ध कराई जाती थी तथा उनकी जिज्ञासाओं का समाधान आचार्य द्वारा किया जाता था। देश के ही नहीं बल्कि विदेशों से भी यहाँ अध्ययन के लिए आते थे। विदेशी छात्रों में तिब्बत के अधिक छात्र होते थे, जो बौद्ध धर्म तथा दर्शन का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यहाँ रहते थे। प्रायः एक छात्रावास तिब्बत के ही छात्रों से भरा रहता था। शिक्षा समाप्ति के बाद विद्यार्थी को उपाधि प्राप्त होती थी जो कि उसकी दक्षता का प्रमाण मानी जाती थी। दसवीं सदी में यहाँ के विद्यार्थियों की संख्या काफी थी जो नालन्दा विश्वविद्यालय से किसी भी प्रकार कम नहीं थी। वस्तुतः मध्ययुगीन भारत में इसे छोड़कर और कोई शिक्षा का केन्द्र इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था, कि सुदूर प्रदेशों के छात्र वहाँ आएं। इसलिए यहाँ छात्रों की अधिक संख्या होना स्वाभाविक था। यहां के अध्यापकों की संख्या भी अधिक थी जो यहां के विहारों तथा आवासों में रहते थे। गौड़ सम्राट धर्मपाल द्वारा निर्मित यहाँ का विहार अत्यन्त विशाल और प्रशस्त था, जिसके चरों ओर सुदृढ़ परिक्षा थी। इनमें बड़े और छोटे अनेक बौद्ध मन्दिर थे। धर्मपाल ने यहाँ 108 आचार्यों को शिक्षा प्रदान करने के लिए नियुक्त किया था। यहाँ के प्रबन्ध के लिए अनेक पदाधिकारी और कार्यकर्त्ता रखे गये थे। इस विश्वविद्यालय का समस्त व्यय बड़े–बड़े लोगों के दान और भेंट पर आधृत था। आवास और भोजन का प्रबन्ध विश्वविद्यालय की ओर से किया जाता था। भिक्षु अध्यापक प्रबन्ध में हाथ बटाते थे। छह द्वार–पण्डितों की समिति द्वारा इसका संचालन होता था। जिसका प्रधान महास्थविर होता था। दसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इसके प्रथम द्वार पर कश्मीर निवासी, रत्नवज्र, द्वितीय द्वार पर गौड़ प्रदेश के रहने वाली ज्ञानश्री मिश्र, तृतीय द्वार पर रत्नाकर शान्ति, चतुर्थ द्वार पर वागीश्वर कीर्ति, पंचम द्वार पर नरोप तथा षष्ठ द्वार पर प्रभाकरमति बैठते थे।

विक्रमशिला से सम्बन्धित छः महाविद्यालय भी बनाए गए थे। यहां विशिष्ट विषयों की शिक्षा दी जाती थी। विक्रमशिला आवासीय विश्वविद्यालय था, इसे रक्षा प्राचीरों से सुरक्षित किया गया था। यह बज्रयान सम्प्रदाय से सम्बन्धित साहित्य व तंत्रवाद के अध्ययन का सबसे बड़ा केन्द्र था। सामान्य पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त विक्रमशिला में न्याय, मीमांसा, धनुर्वेद, गांधर्ववेद और अर्थशास्त्र की भी शिक्षा दी जाती थी। विक्रमशिला के विद्वानों की जीवनी तिब्बत में संरक्षित है। यहां के अनेक विद्वानों ने तिब्बत में शिक्षा व धर्म का विस्तार किया।

e-ISJN: A4372-3069 (UGC Approved) ISSN: 2455-443X
Research Inspiration
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer Reviewed, Open Access & Indexed)
www.researchinspiration.com
Email: researchinspiration.com@gmail.com, publish1257@gmail.com
Vol. 2, Issue-III
June 2017
Impact Factor : 4.012 (IIJIF)

जिनमें प्रमुख हे– वैरोचन, ज्ञानपाद, प्रज्ञाकर मती, रत्नाकर, वागीश्वर व दीपांकर। पूर्व मध्यकाल में जगद्दल विश्वविद्यालय भी शिक्षा के लिए प्रसिद्ध था। इसकी स्थापना पाल शासक रामपाल ने गंगा नदी के तट पर रामवती नगर में की थी।[6]

पूर्व मध्ययुग में मुसलमानों के आक्रमण के कारण अनेक भारतीय शिक्षा मंदिरों का विनाश हुआ, उनमें विक्रमशिला भी था, जिसे 1203 ई. में बख्तियार खिलजी ने तोड़कर और जलाकर नष्ट कर दिया था, उसने दुर्ग समझ रखा था और इसी कारण उसने इसे तोड़ा भी था। तबकात–ए–नासिरी में इसका विवरण दिया गया है, जिसके अनुसार यहाँ के निवासी अधिकांश ब्राह्मण या बौद्ध भिक्षु थे। सभी सिर मुड़ाए हुए थे। इस सबको मौत के घाट उतार दिया गया। हिन्दू धर्म से सम्बन्धित सैकड़ों पुस्तकें थीं, जिन्हें समझाने के लिए मुसलमान शासकों ने बचे हुए अन्य पण्डितों को बुलाया, किन्तु कोई भी पण्डित अर्थ को ठीक से समझा न सका क्योंकि सभी विद्वान मारे जा चुके थे।

संदर्भ

1 जातक संख्या 456, सं. 378, सं. 489, सं. 336, तिलमुत्ति जातक सं. 252।
2 जातक संख्या 522।
3 एम.के. दास एजूकेशन सिस्टम आफ दि ऐशेन्ट हिन्दूज, पृ. 17।
4 वाटर्स– आन हेनसांग ट्रेवेल्स इन इण्डिया, लंदन, भाग–2, पृ. 240–45।
5 नीरज श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारत प्रशासन, समाज एवं संस्कृति।
6 वही।